
एक प्रहार लगातार
केदार

एक प्रहार : लगातार

एक प्रहार : लगातार

(तेवरी संग्रह)

ø कवि : **बेजार**

सार्थक :—सृजन प्रकाशन १५/१०९,
ईसानगर अलीगढ़ ।

एक प्रहार : लगातार

कवि : **बेजार**

सम्पादक : **रमेशराज**

प्रकाशक—सार्थक-सृजन प्रकाशन,
१५/१०६, ईसा नगर,
अलीगढ़।

मुद्रक—गीता प्रिंटिंग प्रेस, द्रोपदी
मार्केट, ईसा नगर,
अलीगढ़।

मूल्य—पाँच रुपए

पृष्ट—चौसठ

प्रति—सात सौ

संस्करण—प्रथम

संपर्क—१५/१०६, ईसा नगर,
अलीगढ़-२०२००१

पूज्य माता जी एवं पिता जी
की स्मृति में

अमर क्रान्तिकारी
सरदार भगतसिंह को
सादर, सप्रेम

सम्पादकीय :—

'बेजार' जी का प्रस्तुत तेवरी–संग्रह 'एक प्रहार : लगातार' सड़ते-गलते सामाजिक मूल्यों को बचाने की एक ईमानदार कोशिश ही नहीं, नयी सभ्यता और संस्कृति के पुष्पों की एक ऐसी महक का संकेत भी है, जहाँ मानव आपसी बैर-भाव भूलकर स्वार्थ-हीन सांसारिकता में रमने लगता है और आत्मिक–चेतना, सामाजिक चेतना का स्वरूप धारण कर जाती है। उदाहरण स्वरूप—

"आदमी को अर्थ दे जीने के जो।
लाइए तासीर ऐसी कथ्य में।।
या
रोकिए मत वक्त के सैलाब को।
तेज उसकी धार होने दीजिए।।

कविता रूप और सौन्दर्य की एक संगीतात्मक लय ही नहीं, जहाँ शब्दों के प्राण सिर्फ ऐन्द्रिक संवेदनाओं में अटक कर मन गुदगुदाने में तल्लीन हो जाते हैं, बल्कि यह कटु यथार्थ भी है—

"नर्तकी के पांव घायल हो रहे।
देखता अय्याश कब यह नृत्य में?
या
बनकर के खिलौना किसी मुफलिस की जवानी।
बाजार में बैठी है खरीदार की खातिर।।
या
हो गये हर रात को अक्सर।
भूख में सहवास के टुकड़े।।

कविता रूढ़ होती हुई परम्पराओं, आस्थाओं या गलत होती हुई राजनीतिक स्थितियों की ओर संकेत-भर ही नहीं देती, बल्कि उनसे जूझने के लिए चुनौतियाँ स्वीकारती हैं, हर दुष्प्रवृत्ति को ललकारती है, यह आज की कविता का, सबल अभिव्यक्ति का, एक ऐसा क्रान्तिकारी दृष्टिकोण है, जिसका ध्येय शोषण, अत्याचार विहीन परम्पराओं की स्थापना ही नहीं, उसे जन-जन के बीच तार्किक और शास्वत भी ठहराना है—

"अब कलम तलवार होने दीजिए।
दर्द को अंगार होने दीजिए।।

या

लिख रहा हूँ दर्द की स्याही से जिनको।
क्रान्ति की बू आयेगी कल उन खतों से ।।

या

इस जमीं का जालिमों के खून से।
फिर नया शृंगार होने दीजिए ।।

कवि हाल ही हुए पंजाब के 'खालिस्तानियों' के व्यवहार से जहाँ बुरी तरह व्यथित है, वहीं भोपाल गैस काण्ड भी उसकी संवेदनाओं पर इतना गहरा हादसा छोड़ता है कि वह तिलमिलाकर कह उठता है—

जान का दुश्मन बना क्यों भिंडरा ?
सन्त पर हैवानियत आसीन क्यूं ?

या

हादिसा भोपाल जैसा ही यहाँ पर हो गया।
एक जहरीली हवा की हर तरफ चर्चा रही ।।

इसके साथ-साथ प्रस्तुत तेवरी-संग्रह की तेवरियों में 'सुकरात', 'मंसूर', 'फातिमा', 'मरियम', 'पांडव', 'मीरा, 'श्याम', 'बिस्मिल', 'निराला' जैसे ऐतिहासिक प्रतीक मानवीय संवेदनाओं के साथ जुड़कर ऐसे संस्कारों को जन्म देते हैं, जिनसे चेतना के स्तर को और ज्यादा ऊँचा उठाया जा सके।

कुल मिलाकर 'बेजार' जी की कलम एक ऐसे सिपाही की भूमिका अदा करती है, जो शोषित-जन का नेतृत्व तो करता ही है, अपने अनुभवों और जनानुभवों के बीच एक रास्ता भी बनाता है, जो दिशाहीन महत्वाकांक्षा से पीड़ित व्यक्ति को कलात्मकता और समाजवादी दृष्टिकोण की ओर ले जाता है। प्रस्तुत संग्रह का पाठकों के बीच स्वागत किया जाना चाहिए, इस विश्वास के साथ—

रमेशराज

कवि की ओर से :—

कविता लिखना कोई सरल कार्य नहीं है, लेकिन उससे भी कठिन है, उसके बारे में कुछ कहना। युवावस्था में कदम रखते ही मुझमें क्रान्तिकारी साहित्य पढ़ने की ललक पैदा होने लगी। इस ललक ने जन्म दिया समाजोन्मुख जीने की प्रक्रिया को। और धीरे-धीरे मेरी मानसिकता व्यक्तिगत–हितों से कटकर सामाजिक–हितों की ओर बढ़ने लगी। इसी मानसिकता ने जन्म दिया कविता को। कविता अब मेरे लिये मनोरंजन का एक साधन न थी, बल्कि आदमी के दुख-दर्द में शरीक होकर उसे त्रासद स्थितियों से उबारने की एक कोशिश, एक जेहाद थी।

कविता जब आदमी से आदमी के बीच पुल का काम करती है तो दूरियाँ सिमटती हैं, अलगाव खत्म होता है, स्वार्थ, परमार्थ में तब्दील होने लगता है और आदमी एक ऐसे लक्ष्य की ओर बढ़ने लगता है, जहाँ मानव-हित सर्वोपरि हो जाता है, यह बात मैंने सरदार भगतसिंह, रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफाक उल्ला खाँ आदि के साहित्य से सीखी और जब उसे शब्दों में बाँधकर सम्प्रेषित करने की कोशिश की तो मेरे हिन्दी अध्यापक डा० एन० एस० दुबे, आर० ई० आई० कालेज दयाल बाग (आगरा) ने प्रोत्साहित किया, सार्वजनिक निर्माण विभाग में सेवारत रहते हुए साहित्यिक कार्यक्रमों में मेरी रुचि बनी रही। स्थानान्तरित होकर अलीगढ़ आ जाने पर अधीक्षण अभियन्ता श्री विजय कुमार माथुर, सेवा निवृत सहायक अभियन्ता ठा० सूरज सिंह पाल तथा तेवरी-पक्ष—सम्पादक मंडल मेरे लिये प्रेरणा–स्रोत रहे। अलीगढ़ में कविवर नीरज एवं डा० रवीन्द्र भ्रमर के आशीर्वाद से भी वंचित न रह सका।

दूसरी तरफ मेरा पारिवारिक वातावरण भी साहित्य–साधना में अनुकूल रहा। मेरे अग्रज श्री शब्द प्रकाश कुल श्रेष्ठ, मेरी पत्नी श्रीमती कुमकुम एवं पुत्र रजत व पुत्री रुनझुन मेरी रचनाओं के प्रथम श्रोता ही नहीं, समीक्षक भी रहे।

'एक प्रहार : लगातार' देश की टुकड़े-टुकड़े होती संस्कृति, नैतिकता, और सभ्यता को धर्म की आड़ में बेचने वाले सन्तों, धन और ताकत के बल पर कानून व्यवस्था को तहस-नहस करने वाले आतंकवादियों, लूट, अपहरण, बलात्कार में लिप्त तथाकथित समाज सेवियों के विरुद्ध एक ऐसी प्रहारात्मक कार्रवाई है, जिससे देश को खंडित होने से बचाने के साथ-साथ एक ऐसी व्यवस्था को जन्म देना है, जिसमें अत्याचार शोषण विहीन समाज की स्थापना की जा सके।

देश की स्वतन्त्रता के लिए हँसकर फाँसी चढ़ने वाले, भारतीय जनमानस को समाजवाद का पाठ पढ़ाने वाले महान क्रान्तिकारी विचारक सरदार भगत सिंह को यह संग्रह समर्पित करते हुए समझ नहीं पा रहा कि क्या इस तरह कोई भी भारतीय उनके बलिदान से उऋण हो सकता है ? नहीं, बिलकुल नहीं। फिर भी•••उनकी विचार धारा को आगे बढ़ाने के लिए यह तुच्छ संग्रह उन्हें समर्पित है।

वन्देमातरम्

बेजार

सन् १९८५

[९]

शान अब खोने लगी है देश की।
आँख नम होने लगी है देश की॥

बात अब ईमान की मत कीजिए।
रूह तक सोने लगी है देश की॥

वहशियों की सभ्यता कांधों पे अब।
जिन्दगी ढोने लगी है देश की॥

दलबदलुओं का करिश्मा देखकर।
आत्मा रोने लगी है देश की॥

आज कुर्सी की लड़ाई हर जगह।
आबरू धोने लगी है देश की॥

~

[२]

अब कलम तलवार होने दीजिए।
दर्द को अंगार होने दीजिए॥

रोकिए मत वक्त के सैलाब को।
तेज उसकी धार होने दीजिए॥

सभ्यता के नाम पर ये जिस्म का।
बन्द अब व्यापार होने दीजिए॥

इस जमीं का जालिमों के खून से।
फिर नया शृंगार होने दीजिए॥

आदमीयत के लिए जो लड़ रहा।
मत उसे बेजार होने दीजिए॥

[३]

कह रहा हूँ विवश हो यह तथ्य मैं ।
पल रही है वेदना आतिथ्य में ।।

जो विदूषक मंच पर हँसता रहे ।
सिसकियाँ भरता वही नेपथ्य में ।।

नर्तकी के पाँव घायल हो रहे ।
देखता अय्याश कब यह नृत्य में ?

सिर्फ समझौता नहीं है जिन्दगी ।
एक जलती आग भी है सत्य में ।।

आदमी को अर्थ दे जीने के जो ।
लाइए तासीर ऐसी कथ्य में ।।

—:०:—

[४]

स्वागत में सभी व्यस्त हैं सरकार की खातिर ।
कोई न दवा लायेगा बीमार की खातिर ।।

अब मानता है कौन सच्चे नेह के बन्धन ?
सम्बन्ध के टुकड़े हुए व्यपार की खातिर ।।

उनकी आँखों में तिरे फुटपाथ के सपने ।
जो घर बनाना चाहते परिवार की खातिर ।।

बनकर के खिलौना किसी मुफलिस की जवानी ।
बाजार में बैठी है खरीदार की खातिर ।।

सब लोग लगाते मेरे ईमान की बोली ।
नीलामी बची है गमे—'बेजार' की खातिर ।।

~

[५]

हर हृदय में बढ़ रही अब पीर है।
देश की हालत बड़ी गम्भीर है॥

प्रश्न खोटी का सभी के वक्ष में।
आजकल चुभता हुआ—सा तीर है॥

दौड़ में निर्णायकों ने ही कसी।
धावकों के पांव में जंजीर है॥

कायरों का लोग अभिनन्दन करें।
'औ' उपेक्षित—सा यहां हर वीर है॥

सड़क पर असहाय पांडव देखते।
हरण होता द्रोपदी का चीर है॥

~

[६]

शब्द अब होंगे दुधारी दोस्तो ।
जुल्म से है जंग जारी दोस्तो ।।

सत्य को सम्मान देता कौन है ?
झूठ का सिक्का है भारी दोस्तो ।।

सभ्यताओं के सजे बाजार में ।
बन गयी व्यापार नारी दोस्तो ।।

लूट में मशगूल है हर रहनुमा ।
लुट रही जनता बिचारी दोस्तो ।।

आदमी के रक्त में मदमस्त जो ।
टूटनी है वो खुमारी दोस्तो ।।

—:०:—

[७]

जो यहाँ झूठी सियासत कर रहे।
आप क्यों उनकी वकालत कर रहे?

डालते है वो डकैती रात में।
जो यहाँ दिन में हिफाजत कर रहे॥

कचहरी में लोग उनके खौफ की।
पूछिए क्या-क्या शिकायत कर रहे?

शहर में चर्चा उन्हीं की है कि वो।
लूट के धन से जियारत कर रहे॥

आप भी उनसे जरा बचकर रहें।
दोस्ती में जो अदावत कर रहे॥

[८]

आजादी क्या मिल सकती थी केवल कोरे नारों से।
इसीलिए लक्ष्मीबाई जूझी थी तलवारों से ॥

है लेखनी स्वतन्त्र सभी की, कोई तुम्हें न रोकेगा।
चाहे कर दो मंगलपाण्डे की तुलना गद्दारों से ॥

खुदीराम, लाहिड़ी, भगत सिंह, बिस्मिल ने क्यों प्राण दिए ?
दुर्गा भाभी नारी होकर क्यों खेली हथियारों से ?

तीर्थ स्थान हुसैनी वाला, काकोरी, चौरी–चौरा।
गूंजेगा दिन–रात क्रान्ति–वीरों के जय–जयकारों से ॥

कितना ही इतिहास मरोड़ो, लेकिन सच तो सच ही है।
भारत माँ के लाल अनेकों खेले हैं अंगारों से ॥

~

[९]

खौफ इतना आदमी खाया हुआ है।
अपनी परछांई से घबराया हुआ है॥

राख होती जा रही हैं बस्तियाँ।
फलक पर काला धुआं छाया हुआ है॥

दर्द से रिश्ता है क्या मत पूछिए?
आज घर मेहमान-सा आया हुआ है॥

जिसने समझौते किये ना झूठ से।
आदमी वो चोर ठहराया हुआ है॥

धर्म के उपदेशकों ने आजकल।
शान्ति का प्रस्ताव ठुकराया हुआ है॥

~

[१०]

शख्स ने नजरे-करम गिरवी रखी।
अपनी आँखों की शरम गिरवी रखी।।

सूदखोरों ने हमारी जिन्दगी।
इस जनम क्या, हर जनम गिरवी रखी।।

सरफरोशी की तमन्ना अब नहीं।
क्रान्तिधर्मी हर कलम गिरवी रखी।।

जो हिमालय की तरह होती अडिग।
हर किसी ने वो कसम गिरवी रखी।।

~

ढो रहा हूँ आज ये एहसास मैं।
झोंपड़ी जलती महल के पास में॥

यह अमीरों का शहर है, इस जगह।
फर्क है कुछ मालिकों में, दास गें॥

एक मृगतृष्णा रही है जिन्दगी।
लुट गये लाखों यहाँ विश्वास में॥

विष मिला अब तक विरासत में हमें।
सांप आकर बस गये इतिहास में॥

~

[१२]

बड़ी विषैली हवा चली है शहरों में ।
घिरे लोग सब अफवाहों की लहरों में ॥

सड़कों पर कस दिया शिकंजा करफ्यू ने ।
कैद हुए हम संगीनों के पहरों में ॥

आप समझते जिन्हें मसीहा की मूरत ।
कातिल आकर छुपे हुए इन चेहरों में ॥

जिनका असर कई पीढ़ी तक रहता है ।
और जियेंगे कब तक ऐसे जहरों में ?

~

[१३]

जिन्दगी पर आज हावी तंत्र है।
आदमी अब बन गया एक यंत्र है॥

लोग आपस में यहाँ डसने लगे।
वैद्य भूला विषहरण का मंत्र है॥

स्वतन्त्रता का पीटते फिरते ढिंढोरा।
मानसिकता आज भी परतन्त्र है॥

जो मसीहा मंच पर बनकर खड़ा।
रच रहा नेपथ्य में षड्यन्त्र है॥

जो मदारी भीड़ ले जितनी जुटा।
लूट लेता उतना वो जनतन्त्र है॥

—:०:—

[१४]

हर जुबां पर झूठ का अब नाम है ।
सत्य के घर में मचा कुहराम है ।।

भीड़ भाड़े के गवाहों की बढ़ी ।
चश्मदीदों का यहाँ क्या काम है ?

जिस तरफ भी जाइए आतंक है ।
रक्त रंजित हर सुबह औ' शाम है ।।

'हम नहीं ले पाते खुल के सांस अब' ।
इस तरह की एक चर्चा आम है ।।

—:०:—

जब कभी भी आपके चर्चे किये।
सच किये, जो भी किये, जिसने किये।।

है निराली आप में भाषण—कला।
खुशफहम् हर मंच पर वादे किये।।

जो न पांडव भी जुए में कर सके।
आपने ऐसे भी समझौते किये।।

रोशनी की बात की जिस आँख ने।
आपने उस आँख में तकुवे किये।।

[१६]

जखम जहरीले को चीरा चाहिए।
काटने को कांच, हीरा चाहिए॥

नाम नफरत का न ले अब आदमी।
प्यार का दिल में जखीरा चाहिए॥

दर्द जिससे दूसरों का भी दिखे।
आंख को ऐसा ममीरा चाहिए॥

अब मसीहा हो तो कोई ऐसा हो।
देश को फक्कड़ 'कबीरा' चाहिए॥

अब 'निराला' की कलम ले हाथ में।
भक्ति में तल्लीन 'मीरा' चाहिए॥

[१७]

जो हिमालय बर्फ से पूरा ढका है।
भूल मत ज्वालामुखी उसमें छुपा है।।

एक टुकड़ा बर्फ का पिघला कभी तो।
खौफतर सैलाब कोई चल पड़ा है।।

चीरती जायेगी हर चट्टान को ये।
हर नदी के हाथ में खंजर लगा है।।

'जिस्म पर आरी न कोई अब चलेगी'।
पेड़ ने हर पेड़ से अब ये कहा है।।

लालटेनें पर्वतों की कह रही हैं–
'घाटियों में रतजगा है—रतजगा है'।।

~

[१८]

फिर किसी अखबार ने छापी खबर।
लाज को लूटा गया है रात—भर ।।

दुष्ट दुर्योधन बिठाने फिर लगा।
सभ्यता को अपनी नंगी जाँघ पर।

आज 'गौतम' फिर सम्हल तुम जाइए।
'चन्द्रमा' की है 'अहिल्या' पर नजर ।।

आबरू कोई न अब 'बेजार' हो।
नौजवानो तुम उठो ललकार कर ।।

~

[१९]

फिर यहाँ 'जयचन्द' पैदा हो गये ।
'मीरजाफर' जिन पै शैदा हो गये ॥

'कृष्ण' की संगत उठाकर देखिए ।
भाट जैसे सब 'सुदामा' हो गये ॥

जब चढ़ी मदिरा तो यारो यह हुआ ।
शहर के कंगाल राजा हो गये ।

मन्दिरों की सभ्यता तो देखिए ।
सन्त भी गुण्डे या दादा हो गये ॥

वह किसी 'बेजार' की बस्ती ही थी ।
स्वप्न जिसमें रोज स्वाहा हो गये ॥

~

[२०]

हर घड़ी आफत कभी ऐसी न थी।
आज जो हालते, कभी ऐसी न थी।।

मानसिकता हर किसी के जेहन की।
स्वार्थ की बावत कभी ऐसी न थी।।

छीन ले रोटी पराये हाथ से।
पेट की चाहत कभी ऐसी न थी।।

जिन्दगी इतनी कठिन पहले यहाँ।
यूं अपेक्षाकृत कभी ऐसी न थी।।

हर नजर 'बेजार' गुजरे वक्त में।
दोस्त बेइज्जत कभी ऐसी न थी।।

~

[२१]

हो गये खाली खजाने गाँव के।
बन गये कुछ ही घराने गाँव के।।

लूट की भाषा, कपट का व्याकरण।
अब बने कौमी-तराने गाँव के।।

आज तक चौपाल पर हावी रहे।
बस वही शातिर पुराने गाँव के।

किस कदर हिंसक हुआ है आदमी ?
लोग आये हैं बताने गाँव के।।

अब लुटेरों के शहर में देखिए।
चल पड़े इज्जत बचाने गाँव के।।

—:o:—

[२२]

वक्त को तेवर बदलने दीजिए।
सत्य का दिनकर निकलने दीजिए॥

चाँदनी को खा नहीं जाए घटा।
दिल जरा सबका बहलने दीजिए॥

इन अलावों में लकड़ियां डालिए।
आग थोड़ी और जलने दीजिए॥

यह शमा रोशन करेगी जिन्दगी।
मोम को 'बेजार' गलने दीजिए॥

—:०:—

[२३]

पुरस्कार हित बिकी कलम, अब क्या होगा ?
भाटों की हैं जेब गरम, अब क्या होगा ?

तथाकथित लोलुप साहित्य-सेवियों को।
अभिनन्दन का पला भरम, अब क्या होगा ?

प्रेमचन्द, वंकिम, कबीर के बेटों ने।
बेच दिया ईमान-धरम, अब क्या होगा ?

यूं कैसे साहित्य बने दर्पण युग का।
बने मात्र दरबारी हम, अब क्या होगा ?

[२४]

फिर जहर सुकरात को पीना पड़ा।
देह में खंजर मसीहा के गढ़ा॥

भूलकर भाषा परस्पर प्यार की।
आदमी हर वक्त आपस में लड़ा॥

मूकदर्शक की तरह कानून भी।
देखता हर पल रहा उसको खड़ा॥

हो गयी बौनी यहाँ की सभ्यता।
आदमी भगवान से निकला बड़ा॥

प्रेम के दो बोल सबको बोलकर।
आज फिर 'मंसूर' फांसी पर चढ़ा॥

[२५]

जिस हवेली को रियाया टेकती मत्था रही।
वह हवेली जिस्म के व्यापार का अड्डा रही॥

'फातिमा' की चीख पर करते दरिन्दे अट्टहास।
आज 'मरियम' बन्द कमरे में पड़ी चिल्ला रही॥

हादिसा 'भोपाल' जैसा ही यहाँ पर हो गया।
एक जहरीली हवा की हर तरफ चर्चा रही॥

वह किसी 'बेजार' की ही जिन्दगी थी दोस्तो।
हर तरह से उम्र-भर जो एक समझौता रही॥

~:~

[२६]

जो सफर में रास्ता दिखलायेंगे।
क्या खबर थी लूटकर ले जायेंगे ?

नाम लेगा कौन तब विश्वास का ?
दोस्त ही जब जान पर बन जायेंगे।

अब दुहाई जो भी देंगे सत्य की।
देशद्रोही वे उन्हें बतलायेंगे ।।

क्या पता था इस खुशी की खोज में ?
जिन्दगी को मर्सिया—सा गायेंगे ?

—:०:—

[२७]

देश की तब क्या नियति रह जाएगी ?
शेष जब हिंसक प्रवृत्ति रह जाएगी ॥

पीर कैसे बँट सकेगी जब यहाँ ?
परस्पर मन में विरति रह जाएगी ॥

क्या पता था रहबरों के जेहन में ?
लूट की ही जागृति रह जाएगी ॥

जिन्दगी की देखना कल तक यहाँ ।
भयानक—सी आकृति रह जाएगी ॥

देखना 'बेजार' अब तो देश में ।
छल–कपट की संस्कृति रह जाएगी ॥

—:०:—

[२८]

यातनाओं का मुसलसल सिलसिला चलता रहा।
आदमी को आदमी कुछ इस तरह छलता रहा॥

कुछ सियासी शातिरों की रोटियाँ सिकती रहीं।
राजनीतिक स्वार्थ में मेरा वतन जलता रहा॥

वो प्रतीक्षा की सुबह आयी न यारो आज तक।
जिन्दगी का सूर्य तो ढलता रहा, ढलता रहा॥

बैर—नफरत से हुई घायल हमारी संस्कृति।
द्वेष का सम्राज्य घर-घर फूलता-फलता रहा॥

—:०:—

[२१]

साथियो ! आकाश में कैसा अंधेरा छा गया ?
वो उठी काली घटा मुंह को कलेजा आ गया ॥

चल रही थी एक ठंडी–सी हवा पहले इधर।
किन्तु मौसम लीजिए अब गीत लू के गा गया ॥

फिर हुई बरसात कैसी रात–भर इस गाँव में ?
खून में डूबा हुआ हर आदमी देखा गया ॥

फूल अब लगते नहीं इन टहनियों पर प्यार के ।
देश भर से बसंत का 'बेजार' लो चर्चा गया ॥

—:०:—

[३०]

बेच दी जिन शातिरों ने लाश तक ईमान की।
ढूंढते हैं आप उनमें शक्ल क्यों इन्सान की ?

कत्ल के दौरान जब मासूम तक बख्शे नहीं।
तब यहाँ रोयी सुबक कर रूह हिन्दुस्तान की ।।

लूटना मजहब बना हो जिन लुटेरों के लिए।
ओढ़ते हैं वे यकीनन सूरतें भगवान की ।।

स्वप्नजीवी नयन को जो दे गया बदहालियां।
हू–ब–हू मिलती है वो ही शक्ल इस मेहमान की ।।

—:o:—

[३१]

कहर सब पर ढा गयीं यूं बिजलियाँ।
बर्फ से भी जल रहीं अब अंगुलियाँ।।

भूख की ऐसी फसल घर—घर उगी।
पेट को छूने लगीं लो पसलियाँ।

छटपटाती जिन्दगी ऐसे यहाँ।
जिस तरह पानी के बाहर मछलियाँ।।

है बड़ी मुद्दत से प्यासी ये फसल।
अम्ल बरसाती हैं लेकिन बदलियाँ।।

—:०:—

[३२]

हर किसी अन्याय से लड़ जायेंगे।
अब न समझौता कोई कर पायेंगे॥

युद्धरत होना जरूरी हो गया।
गीत जोशीले चलो हम गायेंगे॥

लूट की पंचायतें साथी जहाँ।
फैसले निष्पक्ष क्या कर पायेंगे?

आप अब बेजार से मिल लें जरा।
आग से कुछ रू-ब-रू हो जायेंगे॥

—:०:—

[३३]

जो हुकूमत कर रहे हैं ताकतों से।
जुड़ गये जुल्मो-सितम की आदतों से॥

एक मृगतृष्णा है कोरी श्याम फिर भी —
पी रही 'मीरा' जहर को मुद्दतों से॥

बर्फ की जब बात की ज्वालामुखी ने।
हो गये खतरे बहुत से पर्बतों से॥

लिख रहा हूँ दर्द की स्याही से जिनको।
क्रान्ति की बू आयेगी कल उन खतों से॥

~:~

[३४]

पैदल सिपाहियों को ही खतरे हजार हैं।
छाले न उसके पांव में जो घुड़सवार है॥

आम जनता तक कभी राजा नहीं आते।
गोपियों को 'कृष्ण' का क्यूं इन्तजार है?

यह सिलसिला, यह दौर, यूं ही यातनाओं का।
बार—बार है, बार—बार है, बार—बार है॥

लोमड़ी—दुनिया में, एक खरगोश जैसा है?
इस देश की तो आदमीयत की बुखार है॥

—:०:—

हर चेहरा बीमार, देश का क्या होगा ?
होता नहीं सुधार, देश का क्या होगा ?

एक समस्या सिर्फ पेट–भर रोटी की।
और हुई दुश्वार, देश का क्या होगा ?

नैतिकता हो जहाँ लूटना जनता, औ'—
राजनीति व्यापार, देश का क्या होगा ?

लूट, कपट, नफरत के झंझावातों में।
नाव पड़ी मंझधार, देश का क्या होगा ?

देख जरा 'बेजार' आज जनसेवक जी।
दौलत रहे डकार, देश का क्या होगा ?

—:o:—

[३६]

निर्बलों के वास्ते कानून हैं।
आपको तो माफ सौ–सौ खून हैं ॥

कौन कर पायेगा लागू आप पर ?
खुद लिखे जो आपने मजमून हैं ॥

सख्तियाँ उन पर ही बरती जायेंगी ॥
जिनके घर रोटी नहीं दो जून हैं।

भेड़िया है दरअसल वो आदमी।
खून में जिसका सना नाखून है ॥

—:०:—

[३७]

क्रान्ति के झंडे उड़ाये जा रहे।
प्रगति के डंके बजाये जा रहे॥
सीखचों में बन्द सारे देवता।
चोर कुर्सी पर बिठाये जा रहे॥
ज्ञान की गंगा बहाने के लिये।
सदन में उल्लू बुलाये जा रहे॥
नगर को सुन्दर बनाने के लिये।
रोज बुलडोजर चलाये जा रहे॥
हाथ अपने सेंकने के वास्ते।
दूसरों के घर जलाये जा रहे॥
देश का 'बेजार' से आलम न पूछ।
हर नयन में अश्रु आये जा रहे॥

—:o:—

[३८]

घायल है इतिहास समय के वारों से।
चलो रचें साहित्य आज अंगारों से॥

गाँव–गाँव विक्षिप्त 'निराला' घूम रहा।
दलबदलू जा मिली कलम दरबारों से।

आओ फिर 'बिस्मिल' को साथी याद करें।
फिर गूंजे यह जमीं क्रान्ति के नारों से॥

सत्य नहीं कह पाता जब 'बेजार' यहाँ।
लेना देना क्या ऐसे उपहारों से?

—:o:—

[३१]

इस तरह घर–घर में चर्चा आम क्यूं ?
जिन्दगी होने लगी नीलाम क्यूं ?

साथियो ! सोचो जरा यह त्रासदी।
क्रान्ति का देने लगी पैगाम क्यूं ?

रहबरो ! अब भी समय है, होश लो।
है तुम्हारी कौम पर इल्जाम क्यूं ?

रंग गिरगिट—सा जो बदले हर समय।
देवताओं में रहा वो नाम क्यूं ?

—:०:—

[४०]

हर तरफ वातावरण संगीन क्यूं ?
रूह तक इन्सान की गमगीन क्यूं ?

कांपता थर–थर यहाँ हर आदमी।
घूमता कातिल यहाँ स्वाधीन क्यों ?

किस लिए हर सत्य कारावास में ?
कुर्सियों पर झूठ अब आसीन क्यों ?

जान का दुश्मन बना क्यों 'भिन्डरा' ?
संत पर हैवानियत आसीन क्यूं ?

—:o:—

[४१]

हर जेहन में अब धुआं तक है नहीं।
आग का कोई पता तक है नहीं।।

लक्ष्य तक ले जाये जो इस भीड़ को।
एक भी रहबर बचा तक है नहीं।।

वो क्या जाने जिन्दगी के घाव को ?
दर्द ने जिसको छुआ तक है नहीं।।

क्या करेगा क्रान्ति की बातें वो शख्स ?
नींद से अब भी जगा तक है नहीं।।

—:०:—

[४२]

जा रहा है किस तरफ मेरा वतन ?
आग में जलने लगा सारा चमन ॥

देखते ही देखते चारों तरफ ।
सभ्यता का हो गया पूरा गलन ॥

गिद्ध स्वारथ के यहाँ पर नोचते ।
हर किसी सम्बन्ध का पूरा बदन ॥

हाँ उठो हनुमान मेरे देश के ।
अब तो होना चाहिए लंका–दहन ॥

—:०:—

[४३]

मिटे तिमिर हर हाल, ज्योति से ज्योति जले।
लाओ कोई मशाल, ज्योति से ज्योति जले ॥

अब तो हो भारत के चप्पे–चप्पे पर।
हर कोई खुशहाल, ज्योति से ज्योति जले ॥

नफरत, बैर, घृणा को अब तो साथी रे।
कर दो जरा हलाल, ज्योति से ज्योति जले ॥

अंधकार की ओर हमें जो ले जाए।
बदलो ऐसी चाल, ज्योति से ज्योति जले ॥

~:~

[४४]

करफ्यू की सभ्यता सिखायी मजहब ने।
दृश्य भयानक देखे हैं काफी हमने ।।

हिन्दू मुस्लिम सिख में हमको बाँट दिया।
और आदमीयत लगी धू-धूं जलने ।।

रहा पारदर्शी जो अपने जीवन—भर।
कब चेहरे दिखलाये ऐसे दर्पन ने ?

सिर्फ सुबकती रहती हैं रूहें जिसमें।
देखा है वो आलम भी अब तो सबने ।।

—:०:—

[४५]

झूठ को सच बोलिए मत।
जहर ऐसे घोलिए मत॥

क्रान्ति ही आदर्श है अब।
जिन्दगी से रोलिए मत॥

हम में वो ही आस्थाएं।
आप अब टटोलिए मत॥

वक्त है दृढ़ता का साथी।
इस तरह से डोलिए मत॥

—:०:—

[४६]

राम को अब रावन लिखने दो ।
ऐसा सम्बोधन लिखने दो ।।

आज द्रोपदी का कान्हा ही ।
नोच रहा है तन लिखने दो ।।

बुरी निगाहें डाल रहा है ।
सीता पर लक्ष्मन लिखने दो ।।

आंख—आंख में बस आंसू हैं ।
पीड़ित है जन—जन लिखने दो ।।

—:o:—

[४७]

हो गये विश्वास के टुकड़े।
प्यार के इतिहास के टुकड़े॥

जिन्दगी है रेत की मछली।
कंठ में हैं प्यास के टुकड़े॥

हो गये हर रात को अक्सर।
भूख में सहवास के टुकड़े॥

आज भी लेकिन पराजय से।
बीनते हैं आस के टुकड़ें॥

—:०:—

[४८]

हो रहा है वार किस्तों में ।
मिल रहा यूं प्यार किस्तों में ।।

हर किसी गर्दन पे सुविधा की ।
चल रही तलवार किस्तों में ।।

आम या फिर खास की खातिर ।
खोलते वे द्वार किस्तों में ।।

दर्द तो है मुसलसल लेकिन ।
आंसुओं की धार किस्तों में ।।

इस तरह कब तक जियें बोलो ?
जिन्दगी 'बेजार' किस्तों में ।।

—:०:—



✻ बेजार ✻

पूरा नाम—दर्शन प्रकाश कुलश्रेष्ठ

जन्म—२२ नवम्बर, १९४८

जन्म-स्थान—पचगाईं खेड़ा (आगरा)

शिक्षा—बी० एस सी/बी एस० सी,
इन्जीनियरिंग (ससम्मान)

सम्प्रति—यांत्रिक अभियन्ता

लेखन—कविताएं

प्रकाशन—विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में

पता—द्वारा रमेशराज, १५/१०९,
ईसा नगर, अलीगढ़।

* हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन *

१—अभी जुबां कटी नहीं (तेवरी-संग्रह)

सं०—रमेशराज, मूल्य—आठ रुपये

२—कबीर जिन्दा है (तेवरी-संग्रह)

सं०—रमेशराज, मूल्य—अजिल्द-दस रुपये,

सजिल्द-बीस रुपये

३—इतिहास घायल है (तेवरी-संग्रह)

सं०—रमेशराज, मूल्य—पांच रुपये

४—एक प्रहार : लगातार (तेवरी-संग्रह)

कवि—श्री बेजार, सं०—रमेशराज, मूल्य पांच रुपये

५—तेवरी-पक्ष (त्रैमासिक)

संपादक—रमेशराज, वार्षिक मूल्य—दस रुपये

सार्थक—सृजन प्रकाशन १५/१०९

ईसा नगर, अलीगढ़ ।